18

निर्गुण ब्रह्म

प्रस्तावना

उपनिषद् ही वेदान्त है। सभी उपनिषदों का ब्रह्म ही तात्पर्य होता है। एक अद्वितीय ब्रह्म है। तथापि उपाधि भेद से द्विविद्या कल्पित, प्रतिपादित होता है। श्रुति स्मृति आदि से दो प्रकार का ब्रह्म जाना जाता है। निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म। निर्गुण ब्रह्म सर्वोपाधि रहित ही होता है। वह सभी भूतों में सूक्ष्मता से विद्यमान है। सभी कर्मों को कराने वाला है, परन्तु अकर्तृ स्वरूप है। साक्षी रूप में वह सर्वत्र विद्यमान है। इस पाठ में निर्गुण ब्रह्म आलोचित होगा।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप जान पाने में;
- वेदान्त में कितने प्रमाण हैं, जान पाने में;
- सभी उपनिषदों का तात्पर्य जान पाने में;
- ब्रह्म के स्वरूप के विषय में उपनिषदों का सिद्धान्त जान पाने में;
- क्या ब्रह्म स्वयं प्रकाश है जान पाने में;
- षड्भाव विकारों को जान पाने में;
- ब्रह्म शब्द का अर्थ जान पाने में;
- अनादि विषयक ज्ञान जान पाने में;
- अभ्यास स्वरूप का ज्ञान कर पाने में।

18.1 ब्रह्म का अर्थ

वेदान्त में सर्वातिशयरहित व्यापक आत्मतत्व ही ब्रह्म कहा जाता है। अतिशायित्व धर्म प्रथित्यादि भूतों का है। जैसे- अग्नि स्व की अपेक्षा वायुतत्व सूक्ष्म है तथा वायुतत्व की अपेक्षा आकाशतत्व सूक्ष्म तथा नित्य है। अत: पंच महाभूतों में ही तादातम्य दिखता है। आत्मातिरिक्त पदापेक्षया कुछ भी सूक्ष्म व नित्य नहीं होता। अतएव ब्रह्म ही निरतिशय (सर्वातिशय) कहा जाता है। ''ब्रहत्वात् ब्रह्म'' इस व्युत्पत्ति के अनुसार किसी महद वस्तु का नाम ब्रह्म है। यह प्रतीति स्वत: ही होता है। (तै. ब्रह्मानन्दवल्ली - शा.भा. 1/1) ''ब्रृह्-बृहि वृद्धौ'' इस धातु से ब्रह्म शब्द की सिद्धि होती है। अत: अतिशयरहित महद् ही ब्रह्म हैं महत्व क्या है? तो कहते हैं ''यत्र नान्यत् पश्यति नान्यत्शृणोति स भूमा'' (छा. 3 (7/24/1) इत्यादि श्रुतियों में स्वणतया आम्नात है।

18.2 निर्गुण ब्रह्म का लक्षण

18.2.1 ब्रह्म का स्वरूप

वेदान्त में छ: प्रकार के प्रमाण है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि । इन सभी प्रमाणों का प्रामाण्य दो प्रकार का है। व्यावहारिक तत्व बोधकत्व तथा पारमार्थिक तत्व बोधकत्व। जिसका व्यवहारकाल में बोध नहीं होता अपितु तत्वज्ञान होने के अनन्तर बोध होता है, व्यवहारिक तत्व ज्ञान कहलाता है, जिसका तीनों कालों में भी बोध नहीं होता, वही पारमार्थिक तत्व है। इस तत्वद्वय के बोधक को प्रमाण कहते हैं।

अत: स्व प्रमाणों में द्विविध, प्रामाण्य होता है। ब्रह्मस्वरूप विषयक भिन्न प्रमाणों का व्यावहारिक तत्व बोधकत्वरूप प्रामाण्य होता है। इनके विषयों के व्यवहार में बोध नहीं होता। किन्तु ब्रह्म साक्षात्कार होने पर इनका बोध होता है। ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' (छान्दोग्योपनिषदि-''3-14-1''), ''आत्मैवेदं सर्व'' (छान्दोग्योपनिषदि-''8-25-2''), ''ब्रह्मवेदयमृतं'' (मुण्डकोपनिषदि-''2-2-11''), ''सदेव सोग्य इदमग्र आसीत्'' (छान्दोग्योपनिषदि-''3-2-1''), ''तत्त्वमसि'' (छान्दो. उप:-''6-7-8''), ''अयमात्मा ब्रह्म'' (बृहदारणयकोपनिषदि-''2-5-19'')

''ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताब्रह्म दक्षितश्चोत्तरेण।
अध्श्चोर्ध्वञ्च प्रसृतं ब्रहमैवेदं विश्वमिदं तरिष्ठम्॥'' (2/2/12)

इत्यादि अखण्ड चेतन्य तात्पर्य बोधक वेदान्त वाक्यों का पारमार्थिक तत्व बोधकत्व रूप प्रमाण्य होता है। इन अखण्ड चैतन्य तात्पर्य बोधक वेदान्त वाक्यों का जीव ब्रह्मैक्य रूप जो विषय है उस विषय का तीनों कालों में भी बोध नहीं होता है। यह समग्र जगत् ब्रह्माद्धि है। लक्षणों तथा प्रमाणों से ही वस्तु सिद्धि होती है। अत: पहले लक्षण को बताते हैं। लक्षण दो प्रकार का होता हैं स्वरूप लक्षण तथा तटस्थ लक्षण। स्वरूप बोध

में स्वरूप लक्षण ही प्रमाण होता है और उपनिषदों में भी पहले ब्रह्म स्वरूप का कथन ही है। अतएव पहले स्वरूप लक्षण बताया जा रहा है। तैत्तरीयोपनिषद् के ब्रह्मानन्दवल्ली में कहा गया है ''ब्रह्मविदाप्नोति परम्''। तदेषाऽश्युक्ता। सत्य ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परे त्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह। ब्रह्मणा विपश्चितेति (2.1.1)।। आनन्द स्वरूप ब्रह्म से ही यह सब कुछ उत्पन्न होता है। तैत्तिरियोपनिषद् में कहा गया है। आनन्दो ब्रह्मेति व्यवज्ञानात्। आनन्दाह ह्येव खल्विमानि भूताति जायते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसं विशन्तीति। सत्यं ज्ञानमनन्तमानन्यं इत्यादि ब्रह्म स्वरूप का लक्षण है। ब्रह्मज्ञ परस्य ब्रह्म को ही प्राप्त करता है। सत्यं ज्ञान्मनन्तं ब्रह्म इत्यादि परमात्मा के लक्षणार्थिक वाक्य है। जिस स्वरूप से जो वस्तु निश्चित होता है व्यभिचार नहीं करता है, वह वस्तु सत्य है। कूटस्थ है ब्रह्म। उसकी अपने स्वरूप से कदापि च्युति नहीं होती। विकारभूत समस्त पदार्थ मिथ्या है। अत: ब्रह्म मिथ्या नहीं है। भगवान् शंकराचार्य जी ने तैत्तिरियोपनिषद् के भाष्य में कहा है कि ''सत्यमिति'' यद्रुपेण यन्निश्चितं तद्रूपं न व्यभिचरति चेत् तत् सत्यम्। यद्रूपेणमत् निश्चितं तद् व्यभिचरत् अनृतमुच्यते। अत: विकारोऽनृतम्'' वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्। अत: सत् ही सत्य है। अत: सत्य ज्ञान अनन्त ये ब्रह्म के विश्लेषण हैं और ब्रह्म है विशेषज्ञ। ब्रह्म ही ज्ञेय है। ज्ञातव्य रूप में ब्रह्म ही विवक्षित है, अत: ब्रह्म ही विशेष्य है। यहाँ विशेषण विशेष्य भाव है। अत: ''सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' यह समानाधिकरण पद है।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि एक जातीय अनेक द्रव्य युक्ति युक्त होता है, कारण कि विशेष्य का निश्चय करने के लिए ही विशेषणों की सार्थकता है। परन्तु यहाँ तो एक ही विशेष्य एक ही ब्रह्म हैं अत: विशेष्य ब्रह्म के अनेक विशेषण निष्प्रयोजन है? तो कहते है ऐसा नहीं है। यहाँ लक्षण का निर्देश ही विशेषण प्रयोग का उद्देश्य है। ये विशेषण लक्षणार्थक हैं न कि प्रधान। विशेषण में जातियों से ही व्यावर्तन करते है, किन्तु लक्षण सभी से व्यावर्तन करते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् की ब्रह्मा जी के भाष्य में भगवान् शंकराचार्य कहते हैं कि ''न लक्षणार्थत्वाद् विशेषणानाम्''। नाऽयंदोष:। कस्मात्? लक्षणार्थप्रधानानि विशेषणामि, न विशेषण प्रधानान्थेव। कं: पुनर्लक्षणलक्ष्ययो: विशेषणविशेष्ययो: वा विशेष:? उच्यते सज्ञातीमेश्च एवं निवर्तकानि विशेषणानि विशेष्यस्थ, लक्षणन् सर्वत एव, यथा अवकाशप्रदात्रकाशमिति। लक्षणार्थञ्च वाक्यमिति अवोचाम'' इति। यह जगत् ब्रह्म का ही विवर्तरूप है। जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। जैसे घट का कारण मिट्टी है, वह अचेतन स्वभाव है। उसी तरह जगत् का कारण भूत ब्रह्म भी मिट्टी की तरह अचेतन स्वभाव है। इस आशंका के होने पर कहते ज्ञान स्वरूप ही ब्रह्म है। भावार्थक है ज्ञान शब्द, न कि कर्त्तर्थक। तृतीय लक्षण प्रधानविशेषण है ''अनन्तम्''। आनन्त्य त्रिप्रकारक सम्यक है। देशकृत, कालकृत, वस्तुकृत। जैसे देश आकाश का देश अनन्त है। किन्तु कालकृत, वस्तुकृत आनन्त्य इसका नहीं होता। क्योंकि आकाश जन्य होता है एवं सभी जन्य पदार्थ काल तथा वस्तु से परिच्छिन्न होता है। ब्रह्म अकार्य वस्तु है। अत: कालापियों से परिच्छिन्न नहीं होता। क्योंकि सभी वस्तुओं से ब्रह्म अपृथक् है। जो वस्तु किसी वस्तु से भिन्न होता है, वही वस्तु अन्य वस्तुओं का निवर्तक हो सकता है। वस्तुओं

में भेद का कारण ही एक विषयक वस्तु अपर विषयक वस्तु का निवर्तक होता है। सभी वस्तु से अन्यथा होने के कारण ही ब्रह्म अनन्त है। तैत्तिरीयोनिषद् की ब्रह्मानन्दवल्ली में भगवान् शंकराचार्य जी ने कहा है कि ''तद्यथादेशतोऽनन्त आकाशः न हि देशतस्वस्य परिच्छेदोऽस्ति। न तु कालतश्चानन्त्थं वस्तुश्चाकाशस्य। कस्मात्? कार्यत्वात्। नैवं ब्रह्मणंः आकाशवत् कालतोऽपि अन्तवतवम्। अकार्यत्वात्। कार्य हि वस्तु कालेन परिच्छिद्यते, अकार्यञ्चब्रह्म। तस्मात् कालतोऽस्त्यानन्त्यम्। तथा वस्तुतः। कथं पुनर्वस्तुतः आनन्त्यम्? सर्वानन्यत्वात्।'' इति।।

फिर ब्रह्म स्वयं प्रकाश भी है। ब्रह्म के प्रकाश से ही सब कुछ प्रकाशित होती है। सूर्य-चन्द्रमा आदि भी उसके प्रकाश से ही प्रकाशित होते है। अत एव ''मुण्डकोपनिषद में कहा गया है कि ''न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भिन्तो कुतोऽयमग्नि तमेव भान्तमनुभाति सर्वं, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।'' 2/2/11।। इति।।

भगवान चित्सुखी जी भी तत्व प्रदीपिका में स्वप्रकाश का लक्षण करते है। ''अवेद्यत्वेसति अपरोक्ष व्यवहार योग्यत्वम्'' इति। यदि आचार्योक्त लक्षण को स्वीकार करें तो भावी, भूत धारादियों नित्यानुमेय धर्मादियों में अतिव्याप्ति चली जायेगी। यदि ऐसा कहते हैं तो उत्तर देते हैं, कि यह ठीक नहीं है। अनुमान तथा आगम से घट तथा तद्धर्म ज्ञात होते है। अतः घटादियों में भी वेघत्व है। अतः केवल अवेघत्व मात्र लक्षण किया जाये तो पर्याप्त होगा, ऐसा पूर्वपक्षी का कथन है। अब सिद्धान्ती कहता है कि यहाँ पर वेद्य का अर्थ है फलव्यापत्व। अवेद्यत्व फलत्याप्यरूपवेद्यत्व का अभाव है। विषयावच्छिन्न अभिव्यक्त चैतन्य फल है। धर्मादियों इन्द्रियसन्निकर्ष का अभाव होने से विषयावच्छिन्न रूप फल नहीं होता। अतः फलव्याप्यत्व का अभाव है इनमें। अतएव अवेद्यत्व स्वीकृत है।

अब यदि केवल ''अवेद्यत्वम्'' इतना अंश ही लक्षण में होता तो धर्मादियों में अतिव्याप्ति चली जाती, अतएव ''अवेघत्वे सति अपरोक्षव्यवहार योग्यत्वम्'' यह सम्पूर्ण लक्षण करना चाहिये। अन्तःकरण इन्द्रियों के माध्यम से विषयों के प्रति जाकर जब विषयाकार रूप में परिणत हो जाता है, तब अन्तःकरण परिणामविशिष्ट रूप विषय वेद्य कहलाता है। धर्म वा अतीन्द्रिय है, अतः अन्तःकरण परिणाम विशेष का अभाव होने से वेघत्व का अभाव है उसमें, अब प्रश्न करते है कि धर्मादियों में फलव्याप्यत्व न होने पर भी योगीजन धर्म का प्रत्यक्षीकरण करते है? कहते हैं योगियों को भी धर्म प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। यदि धर्म प्रत्यक्षीकरण नहीं होता तो वे सर्वज्ञ कैसे हुये? इस प्रश्न का उत्तर देते है कि उनके सर्वज्ञत्व का प्रयोजक सर्वद्रष्ट्टत्व नहीं है, इन्द्रियों के द्वारा दर्शन-श्रवण-मनन योग्य पदार्थो के प्रत्यक्ष ज्ञान में ही योगी जनों का सामर्थ्य है, न कि अयोग्यों के। इन्द्रिय ग्राह्य विषयों के भी प्रत्यक्ष ज्ञान का सामर्थ्य होने के कारण उन्हें सर्वज्ञ कहा जाता है। कुमारिलभट्ट जी ने श्लोकवर्तिक में कहा है ''यत्रप्यतिशयो दृज़्टः स स्वार्थानतिलद्यनात्। दूर सूक्ष्माविदृष्टो स्यान्न रूपे श्रोत्रवृश्रिता।। इति।। प्रत्येक इन्द्रिय अपने ही विषय के प्रत्यक्ष अन्य इन्द्रियों द्वारा नहीं होता। जैसे कि चक्षुरिन्द्रिय रूप को छोड़कर शब्द का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

अब पूर्वपक्षी कहता है कि- अज्ञानान्तः करणेच्छादियों में फलव्याप्यत्व (वेद्यत्व) का अभाव होने के कारण इस लक्षण से अज्ञानादियों में अतिव्याप्ति नहीं होगा। ''अहम् अज्ञः'' इस प्रकार का अपरोक्ष व्यवहार भी देखा जाता है? तो उत्तर देते हैं कि अज्ञानादियों में यद्यपि अवेद्यत्वं है, तथापि अपरोक्ष व्यवहारयोग्यत्व नहीं है। क्योंकि अज्ञानादि तो ब्रह्म में कल्पित ही है तथा ब्रह्म की अपरोक्ष प्रतीति होती है। ''यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म'' यह बृह्दारण्यको-पनिषद् की श्रुति ही इस बात में प्रमाण है। पूर्व पक्ष कहता है अज्ञानादियों में अपरोक्ष शब्द का प्रयोग सम्भव तो है ही। अतः व्यवहारवश अज्ञानादियों का कल्पित अपरोक्ष व्यवहार योग्यत्व भी हैं। तब सिद्धान्त कहता है कि जैसे शक्ति मय यद्यपि रजत का व्यवहार होता है पर रजत व्यवहार की योग्यता नहीं होती है। वैसे ही अज्ञानादि में अपरोक्ष व्यवहार होते हुए भी योग्यता नहीं होती है। अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्व घटादियों में है, किन्तु इनमें अवेद्यत्व नहीं है। अतः घटादि की व्यावृत्ति के लिए ''अवेद्य'' पद देना आवश्यक है।

अब कुछ लोग कहते हैं कि ब्रह्म के अवेद्य होने से कैसे उसमें अपरोक्ष व्यवहार योग्यत्व है? तो कहते हैं कि ''अपरोक्ष व्यावहार विशेषत्वाभाव'' यह अनिष्ट प्रसक्ति कहना चाहते हैं। आप अथवा व्यवहार का विषय होने के कारण ब्रह्म के ''वेद्यत्व'' का अनुमान कर रहे है। पहले में अनिष्ट प्रसक्ति नहीं कह सकते क्योंकि नैयायिक के मत में आपाद्यु तथा आपादक की अप्रसिद्धि होने के कारण। यहाँ आपादक है। वेद्यत्वाभाव तथा आपाद्य है। ''अपरोक्षव्यवहारविषय- त्वाभाव''। नैयायिकों के अनुसार वेद्यत्व तथा अपरोक्ष व्यवहार विषयत्व ये केवलान्वयि के धर्म है। अतः उन दोनों का अभाव कहीं भी प्रसिद्ध नहीं है। अतः ''अवेद्यत्वे अति अपरोक्षव्यवहारस्योग्यत्वम्'' यह लक्षण साधु ही है। सत्यज्ञानादि ब्रह्म के स्वरूप हैं यदि तो वे धर्म हो जायेंगे और धर्मो कदापि धर्म या लक्षण नहीं होते क्योंकि असाधारण धर्म ही लक्षण होता है। अतः सत्यज्ञानादि कैसे ब्रह्म के स्वरूप के लक्षण हैं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वेदान्त परिभाषाकार धर्मराजध्वरीन्द्र जी कहते है कि ''स्वस्यैव स्वापोक्षया धार्मेधर्मभावकल्पनया लक्ष्यलक्षणत्व सम्भवात्''। यदि वस्तु का स्वरूप उसकी अपेक्षा भिन्न हो, तो ही स्वरूप में धर्म-धर्मि भाव कल्पित होता है। जो ब्रह्म है, वही सत्य-ज्ञान-आनन्दस्वरूप है। परस्पर लेशमात्र भी उनमें भेद नहीं है। यदि सत्य से भिन्न होता तो वह मिथ्या हो जाता है। ब्रह्म के कहने पर सत्य ज्ञानादियों का भी ग्रहण होता है। यद्यपि सत्य ज्ञानादि में बिन्दु मात्र भी भेद नहीं है तथाऽपि चिदाकारान्तः करणवृत्ति में अचिद्व्यावृत्ताकार जब आरूढ़ होता है, तब सत्य ज्ञानादियों का भेद कल्पित होता है। अतएव पद्मपादाचार्य जी ने पञ्चपादिका में कहा है कि ''आनन्दो विषयोनुभावों नित्यत्वञ्चेति सन्ति धर्माः। अपृथक्त्वेऽपि चैतन्यात् पृथगिव अवभासन्ते।''

ब्रह्माणी प्रमाणानपेक्षत्वम्

सभी लौकिक-वैदिक प्रमाण प्रमेय-व्यवहार आत्मा तथा अनात्मा के इतरेतराध्यास को ही सामने रखकर होता है। अभ्यास स्मृति रूप है- दूसरे मे पूर्वदृष्ट का अवभास करना।

अध्याय दो प्रकार का है। अर्थाध्यास तथा ज्ञानाध्यास। अर्थाध्यासपक्ष में ''स्मृतिरूप'' इस का अर्थ है कि जो कुछ भी स्मरण किया जाता है वह स्मृति है। इस अर्थ में स्मृति इसमें पर मे कर्मार्थक क्तिन्-प्रत्यय से निष्पन्न है स्मृति शब्द।

अत: स्मृतिशब्द का अर्थ है ''स्मर्यमाण वस्तु''। ''परत्र'' शब्द का अर्थ है, अन्य अधिकरण में। अर्थात् जिस अधिकरण में जो नहीं रहता, उस अधिकरण में। अब उपसर्ग-पूर्वक भास्-धातु से कर्म अर्थ में अच् प्रत्यय करके अवभास शब्द निष्पन्न होता है। जो प्रकाशित होता है, वही अवभास है। पूर्व दर्शन से जो अवभास हो, उसे पूर्वदृष्टावभास कहते हैं। इस प्रकार के अर्थ के लिए यदि पंचमी तत्पुरूष समास किया जाये तो पूर्वजन्य संस्कार वश जो प्रकाशित हो उसे दो पूर्वदृष्टावभास कहते हैं। अर्थाध्यास पक्ष में समग्र अध्यास लक्षण का अर्थ होगा अन्य अधिकरण (जैसे रज्जु) में, समर्थभाणत्यवहारिकसर्प पदार्थ की तरह पूर्व जन्य संस्कारवश जो प्रतिभासितक सर्पादि प्रकाशित होता है, वही अर्थाध्यास है। ज्ञानाध्यास पक्ष में स्मृतिरूपपद का ''स्मरणमेव स्मृति:'' यह व्युत्पत्ति होगी। इस अर्थ में भाववाच्य में क्तिन् प्रत्यय करके ''स्मृति:'' यह पद निष्पन्न है। स्मृतिरूपपद का स्मरणज्ञान के सादृश्य ज्ञान'' यह अर्थ होता है। ज्ञानाध्यासपक्ष में समग्र अध्यास लक्षण का अर्थ होगा अन्य अधिकरण में स्मृति रूप ज्ञान के सादृश्य ज्ञान प्रथम दर्शन से उत्पन्न होता है। वही ज्ञानाध्याय है। ''परता'' यह पद अधिष्ठान सत्य है। यह सूचित करता है। आरोप्य वस्तु की सत्ता यह ''इष्ट'' पद के द्वारा सूचित होता है।

''परत्र पूर्व दृष्टावभास'' इतना ही लक्षण करेंगे तो ''सेयं गौ:, सोऽयं देवदत्त:'' इत्यादि प्रत्याभिज्ञा में भी अतिव्याप्ति चली जायेगी। इस अतिव्याप्ति के कारण हेतु ''स्मृति रूप'' यह पद दान आवश्यक है। स्मृति होने पर वस्तु असन्निहित होता है। किन्तु प्रत्यभिज्ञा में सन्निहित होता है। अध्यास मिथ्या ज्ञान में निमित्त होता है। मिथ्याज्ञान अध्यास के प्रति कारण है। अध्यास का फल लोकव्यवहार है। लोकव्यवहार के प्रति कारण अध्यास है।

अतएव भगवतपाद शंकराचार्य जी ने अध्यासभाष्य में कहा है ''एवम् अनादिरनन्त: सर्वलोकप्रत्यकत्वा। अध्यास अनाद्यविद्या होने के कारण अनादि है। ज्ञान के बिन अध्यास नष्ट नहीं होता। अतएव अध्यास का आनन्त्य कहा जाता है। इसी प्रकार के अध्यास को ज्ञानीजन अविद्या कहते हैं। अध्यस्त पदार्थ निषेध के द्वारा अधिष्ठान रूप वस्तु स्वरूप के अवधारण को ही विद्या कहते हैं। प्रत्याक्षादि समस्त प्रमाण अविद्याविषयक हैं। प्रमाण का अविद्याविषयत्व प्रत्यक्ष सिद्ध है। देहेन्द्रियादि में अहं मम अभिज्ञान रहित पुरुष का ज्ञातृत्व नहीं है। प्रमातृत्व की अनुपपति होने पर प्रमाणों की भी प्रवृत्यनुपपत्ति होगी। शुद्धात्मा में प्रमातृत्वप्रमेथत्वादि नहीं होते। अविद्या का ही आश्रय लेकर प्रमातृत्वप्रमेयत्वादि व्यवहार सम्भव है। अतएव निर्विशेष निराकार विशुद्ध ब्रह्म के विषय में प्रमाणों की अपेक्षा नहीं है। अतएव अध्यास भाष्य में शंकराचार्य जी कहते हैं कि ''कथं पुनरविद्याविषयाणि प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानिशास्त्राणि च''।। कहते हैं देहोन्द्रियादि में अहं मम अभिमान रहित प्रमातृत्व की अनुपपत्ति में प्रमाणप्रवृत्ति की अनुपपत्ति होती हैं। इन्द्रियों के ग्रहण के बिन प्रत्यक्षादि ज्ञान संभव नहीं है।

अनध्यस्तात्मभाव देह के द्वारा कुछ भी व्याप्ति नहीं होती। इन सब के न रहने पर असन्न आत्मा का प्रमातृत्व उत्पन्न होता है। प्रमातृत्व के बिना प्रमाणवृत्ति नहीं होती है। अतएव अविधविषयक ही प्रत्यक्षादि प्रमाण शास्त्र होता है। यहाँ भगवत्पाद जी का आशय है कि वेदोन्द्रियादियों में अहं अभिमानरहित जो पुरुष है, उस पुरूष का ''अहं कर्ता'', ''अहं ज्ञाता'', ''अहं भोक्ता'' ऐसा प्रमातृत्व भी नहीं होता है। जिसमें प्रमात्त्व नहीं है, उस पुरूष की जो इन्द्रियाँ हैं। उनकी अपने विषय के ग्रहण में प्रवृत्ति भी नहीं होती। यदि इन्द्रियों की प्रवृत्ति नहीं होती तो प्रत्यक्षादि व्यवहार भी सम्भव नहीं है। अधिष्ठान भूत देह के बिना इन्द्रियों का व्यवहार भी सम्भव नहीं हैं। जिस देह में कर्तृत्वभोक्तातृत्वादि अध्यस्तात्मभाव है, उस देह की ही सभी व्यापारों में प्रवृत्ति होती है। जिसका नहीं है उसकी कदापि प्रवृत्ति नहीं होती। ज्ञान सम्पन्न आत्मा और अनात्मा विषयक भ्रम ज्ञान शून्य पारदर्शी का प्रमाण प्रमेयादित्य वहारशास्त्रादि में दृष्ट हैं। अतः प्रमाण-प्रमेय व्यवहार न केवल अविद्या युक्त पुरुष का ही सम्भव है। इस आकांक्षा के निवारणार्थ भगवत्पाद शंकराचार्य जी ने अध्याभास भाष्य में कहा है ''पश्वादिभिश्च अविशेषात्'' शब्दादियों के साथ श्रोत्रदियों का सम्बन्ध होने पर शब्दादि विज्ञान यदि प्रतिकूल हो तो पशु आदि भाग जाते हैं तथा यदि अनुकूल हो तो उसमें प्रवृत्त होते हैं। जैसे दण्डे वाले पुरुष को सामने देखकर ''यह मुझे मारना चाहता है'' इस इच्छा से भाग जाते हैं। यथा हरिततृण पूर्णदाक्ष को देखकर उसकी ओर दौड़ जाते हैं। उसी प्रकार व्युत्पन्न चिन्तन वाले भी पुरुष को देखकर भाग खड़े होते हैं। तद्विपरीत पुरुष के प्रति प्रवृत्त होते हैं।

शास्त्रीय व्यवहार में अपने परलोक सम्बन्ध को जानकर ही उसमें प्रवृत्त होता है। कर्मानुष्ठान में आत्मज्ञान का उपयोग नहीं है। आत्मज्ञान प्राप्ति के अनन्तर कर्म में अधिकार ही नहीं होता। आत्मज्ञान से पूर्व प्रवर्तमान शास्त्र अविद्यायुक्त पुरुष का आश्रय करते हैं, न कि आत्मज्ञान के बाद। शास्त्रीय कर्माधिकार में वेदान्तवेद्य, क्षुधाविरहित, जातिभेदशून्य, असंसारी आत्मा तत्व की अपेक्षा नहीं करता वस्तुतः आत्मा षडभावविकार रहित है। जायते, अस्ति वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति ये षड्भाव विकार है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है ''न जायते म्रियते वा कदाचित्नायं भूत्वा भविता व न भूयः। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणों न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। 2/20।। इस श्लोक का अर्थ है कि आत्मा कभी उत्पन्न नहीं होता, कभी नहीं मरता अर्थात् आत्मा में विनाश लक्षण विक्रिय नहीं है। आत्मा भवन क्रिया (सत्ता) का अनुभव कर बाद में अभाव जो प्राप्त नहीं होता। अर्थात् जो पद के बाद में निर्धारित नहीं रहता है वह मरता है परन्तु आत्मा कभी मरता नहीं है। अतएव आत्मा नित्य है जो पहले न रहकर फिर पैदा होती है वह उत्पन्न होता है लेकिन आत्मा कभी उत्पन्न नहीं होती। क्योंकि वह स्वरूपतः निरवयव, निर्गुण है। अतएव गुणों के क्षय से इसका अपक्षय नहीं होता।

अतएव आचार्य श्री शंकराचार्य जी कहते है कि ''शाश्वत इति अपक्षयलक्षणा क्रिया विप्रतिशिषेध्यते, शश्वद्भवः शाश्वतः। न अपक्षीयते स्वरूपेण, निखयवत्वात, निर्गुणत्वात् च नापि गुणक्षेयण अपक्षयः''। जो अवयव संयोग से उपचित होता हो वह बढ़ता है ऐसा

टिप्पणी

अभिनव कहते है। आत्मा-निरवयव होने के कारण कदापि नहीं बढ़ता। शरीर के विपरिणत होने पर भी आत्मा नहीं विपरीत होती अर्थात् आत्मा सर्वविध विक्रिया रहित है। श्रुत्यादियों में भी यह ही लिखा है कठोपनिषद् में लिखा है ''न जायते म्रियते वा विपाश्चित्, नायं कुतास्चिन्न बभूवकचित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणों न हन्यते हन्यमाने शरीरे। 1/2/18।। और परब्रह्म के निगुर्णत्व के विषय में श्वेताश्वेतरीपनिषद् में कहा गया है ''स्को देवः सर्वभूतेषु गूढः, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।। 6/11।। इस श्रुति का आशय है कि परब्रह्म सभी भूतों में अनुस्भूततया विद्यमान है। सभी कर्मों का कारयिता है। वही साक्षीरूप में सर्वत्र विद्यमान है। अविद्या जन्यगुण उस आत्मा का स्पर्श नहीं करते क्योंकि वह निर्गुण है। सर्वाधिष्ठानभूत ब्रह्म ही है। वही परमात्मा सभी का चेतयिता हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि ''सर्वोन्द्रिय गुणः भासं, सर्वोन्द्रिय विवर्जितम्। असक्तं सर्वभच्चैव निर्गुणं गुणभक्ति च।। 13/14।। सभी जड़ों इन्द्रियों का गुणव्यापारों में सद्धकल्पाध्यव साध गुण वचनादियों से ज्ञेय ब्रह्म सर्वेन्द्रियविवर्जित है। यद्यपि सभी इन्द्रियों तथा तद्विषयक गुणों से अंसाश्लिष्ट् है ब्रह्म। सभी दृश्यों का आस्पद गुणों का भोक्ता है। गीता के 13वें अध्याय में लिखा ''अनदित्वान्निर्गुणत्वात् परमात्मायमत्ययः। शरीरस्थोऽपि कौन्तैय न करोति न लिखते।। 13/39।। परमात्मा अनादि है अर्थात् इसका कोई आदि कारण नहीं है। परमात्मा के अनादित्व के विषय में पंचदशी के चित्रादीयप्रकरण में कहा गया है कि- ''जीवईशो विशुद्धा चित्तथा जीवेशयोभिदि। अविद्याताच्चितो र्योगः षड्स्माकम् अनादयः।। जिसका कारण आदि कारण है वह अनादि नहीं होता, परमात्मा अनादि तथा निरवयव है। जो अगुण होता है उसके गुणों के नाश होने से उसका नाश हो जाता है। निर्गुण होने से परमात्मा अनादि है। शरीर में परमात्मा की यद्यपि उपलब्धि होता है, परन्तु कार्य के करने से वह उनसे लिप्त नहीं होता। इस श्लोक भाष्य में शंकराचार्य जी कहते है कि ''तथा निर्गुणत्वात्। स गुणो हि गुणत्ययात्त्येति। अयं तु निर्गुणत्वात् न त्येति इति परमात्मा अयमव्ययो नास्य त्ययो विद्यत इत्यत्ययः। यत एवमतः ''शरीस्थोऽपि शरीरेषु आत्मन उपलब्धिर्भवति'' इत शरीरस्थ उच्यते, तथाऽपि न करोति। तदकरणादेव तत्फलेनन लिप्यते''।। ऐसे ज्ञानस्वरूप ब्रह्म के विषय में प्रमाणों की अपेक्षा नहीं होती। अतएव गीता भाष्य में भगवत्पाद जी कहते हैं ''सिद्धे हि आत्मनि प्रमातरि प्रमित्सोः प्रमाणान्वेषणा न भवति।। 2/18।। इस भाष्य वाक्य के अनुसार आत्मा के विषय में प्रमाण की अपेक्षा नहीं है। किन्तु आत्मज्ञान होने पर सभी भूतों में खुद को देखता है। इस प्रश्न के उत्तर में ''सर्वमिदं ब्रह्म'' ''यह सब कुछ ब्रह्म हैं'' यह कहा जाता है। ऐसी अवस्था में ब्रह्मतीत् अपना ही प्रत्यक्षीकरण करता है। अतः ऐसी अवस्था में तद्विषयक प्रत्यक्ष प्रमाण तो होता ही है। यत् साक्षादपरोक्षाद ब्रह्म 3/4/1 यह बृहदार्यण्यकोपनिषद् में निगदित श्रुति ही इसमें प्रमाण हैं।

पाठगत प्रश्न

1. ब्रह्म के स्वरूप लक्षण विषयक श्रुति कौन सी है?
2. ब्रह्म के आनन्द स्वरूप प्रतिपादी का श्रुति कौन है?
3. ब्रह्म के प्रमाणानपेक्षत्व के विषय में शंकराचार्य जी ने क्या कहा है?
4. शास्त्रज्ञों को भी स्वतन्त्र रूप से ब्रह्म ज्ञानान्वेषण नहीं करना चाहिये इस पर शंकराचार्य जी द्वारा उक्त वाक्य लिखिये?
5. अविद्या के त्रिगुणात्मिका होने में प्रमाणभूत श्रुतिवाक्य लिखिए।
6. ब्रह्म के स्वप्रकाशत्व में क्या प्रमाण है?
7. अनादियों के विषय में विद्यारण्यस्वामी जी ने क्या कहा है?
8. परमात्मा के निर्गुणत्व का प्रतिपादन करने वाली श्रुति कौन सी है?
9. परमात्मा के निर्गुत्व में कौन सा स्मृति वाक्य प्रमाण है?
10. लक्षण तथा विशेषण में क्या भेद है?
11. अध्यास क्या है?
12. अध्यासलक्षण में ''स्मृतिरूप'' यह पद न रखने पर कहाँ अतिव्याप्ति होती है?
13. सभी शास्त्र तथा प्रमाण किसका अतिक्रमण नहीं करते?
14. पण्डितों ने किसे विद्या कहा है?
15. अध्यास का आनन्त्य कैसे है?
16. अध्यास का फल क्या है?
17. ज्ञानाध्यास पक्ष में समग्र अध्यासलक्षण का अर्थ क्या होगा?
18. अर्थाध्यास पक्ष में समग्र अध्यासलक्षण का अर्थ क्या होगा?
19. आत्मा के धर्म के विषय मे पद्मपादाचार्य जी ने क्या कहा है?

पाठ का सार

यह सब कुछ आत्मा है परन्तु सर्वत्र हम आत्मा को देखने में असमर्थ है। क्योंकि हमें अज्ञान है वह अज्ञान त्रिगुणात्मक है। श्वेतश्वतरोपनिषद् में कहा है ''अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां, बह्वीः प्रज्ञाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते, जहात्येनां

टिप्पणी

भुक्तभोगामजोऽन्यः। 14/15।। उस अविद्या का हमें त्याग करना चाहिये। उसके त्याग के लिए ब्रह्म ज्ञान की आवश्यकता है। ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हेतु गुरुसन्निधि में जाना चाहिये। क्योंकि गुरु अज्ञानं का नाशक होता है। शास्त्रपारदर्शी भी अपनी बुद्धि से आत्मज्ञान का अन्वेषण न करें। अतएव मुण्डकोपनिषद् में भगवान् शंकराचार्य ने कहा है कि शास्त्रज्ञोऽपि स्वातन्त्र्येण ब्रह्मज्ञानन्वेषणं न कुर्यात्। इत्येत्वद् गुरुमेव अवधारणफलम्।। 2/12।। इस देह में रहकर ही हमें जन्म को वश में करता है। इस देह में रहकर ही जिन्होंने जन्म जीत लिया उनका अन्तःकरण ब्रह्म में निश्चलीभूत है, अर्थात् वे ब्रह्म में ही स्थित रहते है। वे तब खुद में खुद का अनुभव करते है। उस स्वयं प्रकाश स्वरूप ब्रह्म से ही हम सभी प्रकाशित है। ''तत्र न सूर्या भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयअग्निः। तमेव आत्रमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभति।। 2/1/11।। यह मुण्डकोपनिषद् में स्थित श्रुति ही पूर्वोक्त कथन में प्रमाण है। फिर जीव तथा ब्रह्म में भेद अविद्याकल्पित है, वस्तुतः अभेद में ही सभी वेदान्तों का तात्पर्य है।

अधिगत विषय

1. सत्यं ज्ञानमनन्तं आन्दम् इत्यादि ब्रह्म के स्वरूप लक्षण है।
2. अवेद्यत्वे सति ''अपरोक्षत्यवहारयोगयत्वम्'' यह स्वप्रकाश का लक्षण है।
3. जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्म है।
4. जीवब्रह्म का भेद अविद्या के द्वारा कल्पित है।
5. ज्ञानस्वरूप आत्मा में प्रमाणों की अनपेक्षा है।
6. निष्कल, निष्क्रिया, शान्त, निरवद्य, निरंजन, यही निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप है।
7. सर्वत्र सर्वदा ही ब्रह्म विराजमान है।
8. सत्यं ज्ञानमन्तम् ये ब्रह्म के विशेषण लक्षार्णाधक है, न कि विश्लेषणप्रधान्।
9. ''स्मृति रूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः'' यही अभ्यास है।
10. सभी शास्त्र तथा प्रमाण अविद्यावान् विषय का अतिक्रमण नहीं करते है।

पाठान्त प्रश्न

1. कितने प्रमाणों की अपेक्षा की अपेक्षा है या नहीं, विचार कीजिए।
2. मुमुक्षुओं को कहाँ से गुरुसन्निधि में जाना चाहिये?
3. ब्रह्म का स्वप्रकाशत्व क्या है?

टिप्पणी

4. स्मृति क्या है?

5. प्रत्याभिज्ञा क्या है?

6. किसके बिना इन्द्रियों की प्रवृत्ति सम्भव नहीं है?

7. लक्षण तथा विशेषण में क्या भेद है?

8. निर्गुण ब्रह्म में प्रत्याक्षादि प्रमाणों की अनपेक्षा कैसे है? प्रदर्शित कीजिए।

9. शंकराचार्योक्तदिशा निर्गुणत्व का प्रतिपादन कीजिए।

10. ब्रह्म शब्द का अर्थ बताये?

11. वेद्यत्व क्या है?

12. ब्रह्म का स्वरूप लक्षण वर्णित करें?

13. अध्यास स्वरूप का वर्णन करें?

14. अध्याय के प्रति क्या कारण है?

15. ब्रह्म के धर्म कौन है?

16. अध्याय का आनन्त्य कैसे हैं?

17. तत्त्वप्रदीपिका के अनुसार स्वप्रकाशत्वा की व्याख्या कीजिए?

18. अर्थाध्यास का वर्णन करें?

19. अध्यास का अनादित्व कैसे है?

20. पशु आदि तथा शास्त्रपारदर्शी इन दोनों का समान प्रमाण प्रमेय व्यवहार इस विषय को प्रतिपादिक करें?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. तैत्तिरियोपनिषद् की ब्रह्मानन्दवल्ली में कहा है-

ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्। तदेषाऽभ्युक्ता। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्यामन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह। ब्रह्मणाविपश्चितेति।। 2/1/1।।

टिप्पणी

2. तैत्तीरीयापनिषद् में कहा है आनन्दो ब्रह्ममेति व्यज्ञानात्। आनन्दाद ह्येव खल्लिवनानि भूतानि प्रयन्त्याभिविशन्तीति।

3. ''गीताभाष्य में शंकराचार्य जी ने कहा है ''सिद्धे हि आत्मनि प्रमातरि प्रमित्सो'' प्रमाणान्वेषणा न भवति।

4. मुण्डकोपनिषद् में भी शंकराचार्य जी ने कहा है ''शास्त्रनोऽपि स्वातन्त्र्येण ब्रह्मजानावेषण न कुर्थीत् इति एतदृगुरुमेवावधारण- फलमिति।। 1/2/12।।

5. श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा कि ''अजामेकां लोहित-शुक्लकृष्णां, बद्धी प्रज्ञा सृजमानां सरूपा:। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते, जहात्येना भुक्तभोगामजोऽन्य:।

6. मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है ''न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं ने मा विद्युतो भन्ति कुतोऽथमग्नि:। तमेव भान्तमनुभति सर्वं तस्य भासा सर्वामिद विभाति।। 2/2/11।। इति

7. पंचदशी के चित्रप्रदीपाधिकरण में कहा गया है ''जीव ईशो विशुद्धा चित्तथा जीवेशयोर्भिदा। अविद्या तच्चितोर्योग: षऽस्मारूमनदय:।।

8. परब्रह्म के निर्गुणत्व के विषय में श्वेताश्वतरोपनिषद् में कथित है कि ''एको देव: सर्वभूतेषु गूढ़:, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास: साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।। इति।। 6/11।।

9. गीता के 13वें अध्याय में कहा गया है कि ''अनादित्वात् निर्गुणत्वात् परमात्माऽयमत्यय:। शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिखते।। 3/39।। इति।।

10. विशेषण सजतियों से ही व्यावर्तन करते हैं, जबकि लक्षण सजातीय-विजातीय दोनों से ही त्यावर्तन करते हैं।

11. अध्यास है ''स्मृतिरूप: पत्र पूर्व दृष्टावभास:।''

12. अध्याय लक्षण में ''स्मृतिरूप:'' इस पद के ग्रहण के अभाव में ''सेयं गौ:'', ''सोऽयं देवात्व:'', इत्यादि स्थानों में अतिव्याप्ति हो जाती।

13. सभी शास्त्र तथा प्रमाण अविद्यावान् विषय का अतिक्रमक नहीं करते।

14. अध्यस्तपदार्थ निषेध द्वारा अधिष्ठान रूप वस्तु स्वरूप के अवधारण को ही पण्डित विद्या कहते है।

15. ज्ञान के बिना ध्वंसाभाव होने से ही अध्यास का आनत्य है।

16. लोकव्यवहार ही अध्यास का फल है।

टिप्पणी

17. ज्ञानाध्यास पक्ष में समग्र अध्यास लक्षण का अर्थ होगा ''अन्य अधिकरण में स्मृतिरूप ज्ञान का सादृश्य जो ज्ञान पूर्ण दर्शन से उत्पन्न होता है, वही ज्ञानाध्यास है।

18. अर्थाध्यास पक्ष में समग्र अध्यास लक्षण का अर्थ अन्य अधिकरण जैसे रज्जु आदि में स्मर्यभाण व्यवहारिक सर्पादि पदार्थ की तरह पूर्व जन्यसंस्कारवश जो प्रातिभासिक सर्पादि प्रकाशित होता है, वही अर्थाध्यास है।

19. पद्मपादाचार्य जी ने पंचपादिका में कहा है कि

''आनन्दो विषयानुभवो नित्यत्वञ्चेति सन्ति धर्माः।
अपृथक्त्वेऽपि चैतन्यात् प्रथागिषा अवभासन्ते॥ इति॥

॥अट्ठारहवाँ पाठ समाप्त॥